संस्कृत साहित्य सौरभ

शिशुपाल वध

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१६

माघ-कृत

शिशुपाल-वध

श्री सुशील
द्वारा
कथासार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१ ९ ५ ७

सस्ता साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है । भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो । लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं । उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं ।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत कर रहे हैं ।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है । पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है ।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है ।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं । आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी । पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा । यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे ।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है । आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे ।

—मंत्री

भूमिका

'शिशुपाल-वध' संस्कृत साहित्य के तीन प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है। पंडित लोग विशेष रूप से इनका अध्ययन करते हैं। इसी महाकाव्य के लेखक हैं माघ। कालिदास उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, भारवि अर्थ-गौरव के लिए और दंडी पदलालित्य के लिए। लेकिन माघ में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। उन्होंने केवल एक ही ग्रंथ लिखा है, लेकिन इसी एक के कारण वह अमर हैं। 'शिशुपाल-वध' की कथा बड़ी साधारण है; पर कवि ने अपनी प्रतिभा से उसमें अद्भुत चमत्कार पैदा कर दिया है। उनका ऋतुवर्णन अलंकारों का प्रयोग, प्रकृति निरीक्षण शक्ति तथा वाक्चातुरी सब अद्भुत हैं।

दूसरे महाकवियों की भांति इनके जीवन के बारे में भी बहुत कम मालूम है। जो कुछ कवि ने स्वयं लिखा है उससे तो यही पता लगता है कि उनके पिता दत्तक सर्वाश्रय थे। वे विद्वान् तो थे ही, अमितदानी भी थे। उनके दादा सुप्रभदेव महाराज वर्मन् के महामात्य थे।

विद्वानों ने महाराज वर्मन् का समय विक्रमी संवत् ६८२ निश्चित किया है। इसके अनुसार माघ ईस्वी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और ईस्वी आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रहे होंगे। दूसरे प्रमाणों से भी अभी तक यही सिद्ध हुआ है। राजा भोज और इनको लेकर भी एक कथा प्रचलित है, पर वह सही नहीं है। सही इतना ही है कि माघ की जन्मभूमि भिन्नमाल (वर्तमान श्रीमाल) आजकल राजस्थान और गुजरात की सीमा पर है। वह प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। वह शिक्षित थे, दानी थे, वैभवशाली थे, विद्वान् थे और थे विनोदप्रिय। इन सब गुणों की छाप 'शिशुपाल-वध' पर है।

म्पादक

शिशुपाल-वध

: १ :

एक बार श्रीकृष्ण अपने पिता वसुदेवजी के घर निवास कर रहे थे कि उसी समय उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र नारदमुनि को आकाश से उतरते हुए देखा। एकाएक वह उन्हें पहचान न सके। सोचने लगे कि यह चारों ओर फैला हुआ तेज क्या है जो आकाश से सीधा नीचे की ओर गिरता चला आ रहा है! पहले तो उन्होंने उसे 'तेज पुंज' समझा। फिर जब वह कुछ पास आ गया तो देखा कि वह कोई 'शरीरधारी' है; और पास आने पर उसके अंग साफ दिखाई देने लगे। वह समझ गये कि यह तो कोई 'पुरुष' है। अंत में स्पष्ट हो गया कि वह नारद हैं।

नारद की जटाएं कमल के केसर की तरह भूरे रंग की थीं। उनका रंग शरत् ऋतु के चंद्रमा के समान गोरा था। वह ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी पड़ जाने के कारण पीली बेलों से शोभित हिमालय। वह काले रंग की

मृगछाला ओढ़े हुए थे, जिसे भूरे रंग की मूंज की मेखला से बांध रखा था। जनेऊ सुनहले रंग का था। गले में स्फटिक की माला थी और वह अपनी 'महती' नाम की वीणा को बारबार देख रहे थे।

उन्हें पहचान कर श्रीकृष्णजी अपने आसन से उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें बड़े आदर के साथ बिठाया। महर्षि ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने कमंडल से लेकर उनपर जल छिड़कने लगे। उस जल को श्रीकृष्ण ने सिर झुका कर ग्रहण किया। वह सारे तीर्थों का जल था। महर्षि नारद ने श्रीकृष्ण की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद श्रीकृष्ण बोले, "आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। आपका आना मेरे लिए गौरव का कारण है। यद्यपि आपको किसी बात की चाह नहीं है, फिर भी क्या मैं आपके आने का कारण जान सकता हूं?"

इस पर महर्षि नारद पुनः श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं इंद्र का संदेशा लेकर आया हूं, उसे सुनिए। दिति का हिरण्यकशिपु नाम का एक पुत्र था। उसने सब देवताओं को पराजित कर दिया था। वह तीनों लोकों में इच्छानुसार घूमता था। आपने तब नृसिंह रूप धारण करके उसका वध किया

था। उसके बाद वही दैत्य रावण के रूप में पैदा हुआ। वह बड़ा साहसी था और उसने शिवजी से वर पाया था। वह बार-बार देवताओं को पराजित करता, उन्हें लूटता और तरह-तरह से परेशान करता था। इंद्र उसके डर से पहाड़ों में छिपा रहता। विष्णु का चक्र, वरुण का नागपाश अस्त्र, कोई उसका बाल बांका न कर सका। उसने कुवेर का पुष्पक विमान छीन लिया। उसने यम के भैंसे के सींग उखाड़ डाले। यही नहीं, उसने गणेशजी का भी एक दांत उखाड़ दिया था। चंद्र, वायु, अग्नि सब उसके सेवक थे। वही रावण यह जानकर भी कि आपने ही रामरूप में जन्म लिया है, सीता-हरण करने से नहीं चूका। तब आपने समुद्र पर पुल बांध कर उसे मारा था।

वही रावण अब शिशुपाल के रूप में पैदा हुआ है। बचपन में उसके चार हाथ और तीन नेत्र थे। वह बड़ा तेजस्वी और राजाओं से कर लेने वाला है। उसे अपने बल का बड़ा घमंड है। उसी घमंड के कारण वह दुनिया को परेशान कर रहा है। उसे आप मार डालें।"

इंद्र का संदेशा देकर जब नारदजी जाने के लिए उठे तो श्रीकृष्ण ने कहा, "नारदजी, ऐसा ही करूंगा।"

: २ :

श्रीकृष्ण शिशुपाल पर आक्रमण करने के लिए जाना ही चाहते थे कि राजसूय-यज्ञ में आने के लिए उन्हें महाराज युधिष्ठिर का निमंत्रण मिला। वह संशय में पड गये कि किधर जाऊं। अंत में इस बात का निश्चय करने के लिए वह अपने चाचा उद्धव और बड़े भाई बलराम के साथ सभा-भवन में पहुंचे। उन्होंने अपने संशय को उनके सामने रखते हुए कहा, "युधिष्ठिर के सब दिशाओं को जीतनेवाले भीम, अर्जुन आदि भाई हैं। वह हमारे बिना भी यज्ञ कर सकते हैं। लेकिन हमें बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पंडितों ने बढ़ते हुए रोग और शत्रु को एक जैसा माना है। मैं इस बात से दुःखी नहीं हूं कि शिशुपाल ने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया है, किंतु वह सबको पीड़ा देता है, यह बात मुझे बहुत दुःख पहुंचाती है। मेरा यही विचार है। अब आप अपनी राय दें।"

यह कहकर श्रीकृष्ण बैठ गये। उनके बाद शिशुपाल के अपकारों को याद करते हुए और उसके दुःख से अपने होठों को कंपाते हुए बलराम उठे। क्रोध के कारण उनका शरीर लाल हो उठा था और उस

पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं। उन्होंने कहा, "मेरी राय में कृष्ण ने जो कुछ कहा है उसीके अनुसार शीघ्र काम करना चाहिए। उन्होंने संक्षेप में बहुत कुछ कहा है। उसका अर्थ बड़ा गहरा है। तेजस्वी पुरुष शत्रुओं को जड़मूल से मिटाये बिना उन्नति नहीं करते। सूरज अंधेरे को बिल्कुल मिटाकर ही आगे बढ़ता है। जबतक एक भी शत्रु बाकी है, मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता।"

फिर उसके अपकारों को गिनाते हुए उन्होंने कहा, "जो शत्रु बार-बार बड़े-बड़े अपराध करता है, उसे कौन क्षमा कर सकता है ? वह क्रुद्ध है। उससे संधि की बात करना उसे और भी क्रुद्ध करना है। इसलिए आप इंद्रप्रस्थ न जायं, बल्कि शिशुपाल पर आक्रमण करें। सभी अपना स्वार्थ साधते हैं। युधिष्ठिर यज्ञ करें, इंद्र स्वर्ग का पालन करें, सूरज जगत् को तपाता रहे और हम शत्रुओं का नाश करें।

बलराम की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने उद्धव को बोलने का इशारा किया। उद्धव उठे और शांत भाव से बृहस्पति के समान बोले, "आप शिशुपाल को अशक्त समझकर उसका अपमान न करें। ऐसा न समझें कि वह अकेला है, इसलिए आसानी से जीता जा सकता है। वह अकेला नहीं है। बाणासुर, काल-

यवन, शाल्व, रुक्मि, द्रुम आदि अनेक राजा उसके साथ हैं। जैसे छोटी-सी नदी महानदी के साथ मिलकर समुद्र पहुंच जाती है, उसी तरह छोटा-सा मनुष्य बड़ी सहायता पर अपना काम सिद्ध कर लेता है। आपके आक्रमण करते ही उसके मित्र और आपके शत्रु सब उसकी ओर हो जायंगे। इस प्रकार उत्तेजित होकर वे राजसूय-यज्ञ में विघ्न डालेंगे। और आप सबसे पहले युधिष्ठिर के शत्रु बन जायंगे। युधिष्ठिर ने आपको इसलिए बुलाया है कि आपके कंधे बहुत बोझ उठा सकते हैं। शत्रु को तो बाद में वश में किया जा सकता है, परंतु मित्र का मन एक बार खराब हो जाय तो फिर, सब कुछ उसका चाहा करने पर भी, वह कठिनता से ठीक होता है। आपने अपनी बुआ से यह प्रतिज्ञा की थी, 'मैं तुम्हारे पुत्र के सौ अपराध क्षमा करूंगा।' अभी वह पूरे नहीं हुए हैं, इसलिए भी आपको रुकना चाहिए। तबतक आप गुप्तचरों से उसकी शक्ति का पता लगावें। आपके गुप्तचर आपकी ओर के राजाओं को आपका संदेश देकर युधिष्ठिर की राजधानी में पहुंचा देंगे। वहां युधिष्ठिर आपके प्रति विशेष भक्ति प्रकट करेंगे ही। यह देखकर शत्रु राजा आपसे और भी शत्रुता करने लगेंगे। इस प्रकार

आपको अपनी ओर से युद्ध करने की जरूरत ही नहीं रहेगी। वे स्वयं युद्ध शुरू करेंगे और जब युद्ध शुरू हो जायगा तो वे दुर्बल पक्ष वाले आपके प्रताप की आग में पतंगों की तरह जल मरेंगे।"

उद्धव की ये अर्थ-भरी बातें सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और अपने आसन से उठकर खड़े हो गये।

: ३ :

इसके बाद युद्ध का विचार त्यागकर श्रीकृष्ण इंद्रप्रस्थ की ओर चल पड़े। तब उनकी शोभा देखते ही बनती थी। दासों ने उनके मस्तक के ऊपर पूनम के चंद्र के समान सुंदर श्वेत छत्र लगाया हुआ था। वे श्वेत रंग के ही चंवर डुला रहे थे। उनके मुकुट में नाना रंग की अनेक मणियां जड़ी हुई थीं। उन्होंने कानों में मरकत मणिवाले चमकदार कुंडल पहने हुए थे। भुजाओं पर अंगद शोभा दे रहे थे। हाथों में पद्म-राग मणियों से जड़े हुए कड़े थे। गले में मोतियों की माला और कौस्तुभ-मणि पहन रखी थी। कमर में भी मोतियों की माला बंधी हुई थी, जो पैरों तक लटक आई थी। शरीर उनका इंद्र नील मणि के समान नीला था। वस्त्र पीले थे। इस कारण

उनकी शोभा यमुना के उस रंग-बिरंगे जल के समान हो रही थी, जिसपर कमलों का पराग फैला हुआ हो।

उनके दाहिने हाथ में सुदर्शन चक्र था। शत्रुओं के शरीरों को नाश करने में कुशल उनकी गदा कौमोदकी, खड्ग नंदक और सींगों का बना हुआ धनुष, ये सब भी उनके पास थे। पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनाई दे रही थी और वह शीघ्र चलनेवाले पुष्परथ पर चंद्रमा की तरह शोभित हो रहे थे। जब वह रथ पर बैठ चुके तो सांपों के शत्रु गरुड़ रथ की ध्वजा के ऊपर आ बैठे। चलते समय पर्वत की गुफाओं को कंपानेवाला नगाड़ों का शब्द होने लगा। धरती कांपने लगी।

उनकी सेना उनके पीछे थी। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सब एक-दूसरे से सट कर चल रहे थे। उसीके साथ श्रीकृष्ण का रथ भी बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। वह मुड़-मुड़कर समुद्र से घिरी हुई सुनहरी द्वारिका को देखते जा रहे थे। वह द्वारिका रत्नों से भरी हुई थी। उसके भवन बड़े सुंदर थे। वे मणियों, चित्रों और खिलौनों से सजे थे। उनपर पताकाएं लहरा रही थीं। भीतर पालतू पक्षी चहचहाते थे। वहां के मार्ग कीचड़ रहित और विस्तृत थे।

वहां के निवासियों का चरित्र निष्कपट, निष्पाप और कुल-धर्म के अनुसार था। वहां की नारियां परम सुंदर थीं। घर-घर में कल्पवृक्ष लगे हुए थे। वे लोग जो चाहते थे वही उनको मिलता था।

ऐसी द्वारिका नगरी को देखते हुए श्रीकृष्ण सेना के साथ बस्ती से बाहर आ गये। समुद्र की तरंगें झाग फेंकती हुई उठ रही थीं। उसके कारण ऊंची आवाज हो रही थी। सदा गरजनेवाले मेघ एक कोने में चुपचाप जल पी रहे थे। यहां उन्होंने समुद्री द्वीपों में रहनेवाले व्यापारियों को देखा और उनका अभिनंदन किया।

वहां से चलकर वे कच्छ प्रदेश में पहुंचे। सैनिकों ने वहां लवंग-पुष्पों की मालाएं धारण कीं, नारियल का जल पिया और हरी सुपारियों को चबाया। इस प्रकार समुद्र का आतिथ्य स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण ने आगे के मार्ग पर रैवतक पर्वत को देखा। वह नाना प्रकार की मणियों और धातुओं से परिपूर्ण था। उसपर चारों ओर से बादल छा रहे थे। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह सूरज का रास्ता रोकना चाहता हो। उस पर नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छादित वृक्ष थे। उनकी डालों पर नीलकंठ वाले मोर बैठे हुए थे। वहां कमल

भी बहुत थे। उनपर भौंरे गूंज रहे थे।

श्रीकृष्ण ने रैवतक को पहले भी अनेक बार देखा था, लेकिन इस बार उन्हें उसकी नई सुंदरता देखकर बड़ा अचरज हुआ। यह देखकर उनका सारथी बोला, "महाराज! इस पर्वत की चोटियां बड़ी ऊंची हैं। उनपर चंद्रमा और सूर्य की किरणें पड़ती हैं। मेघ इनपर जल बरसाते हैं। यहां झरने नाचते हैं। दूब से भरी सुनहरी भूमि वाला होने के कारण, यह आप जैसा लगता है। देखिए, यहां नाना रंगवाले 'प्रियक' जाति के हिरन घूमते हैं। हाथी सरोवर में घुसकर कमलों से खेलते हैं। यह पर्वत कदंब के फूलों की सुगंध से महक रहा है। यहां सिद्ध और किन्नर विहार करते हैं। वायु बांसों के सूराख में से होकर अंदर जाती हुई कैसा मधुर शब्द कर रही है! यहां के सरोवरों में इंद्रनील मणियों की शिलाएं पड़ी रहती हैं। झरनों के ऊपर से गिरने के कारण जलधारा पर रत्नों की किरणें पड़ रही हैं। उससे वह इंद्रधनुष की तरह रंगीन हो उठी है। यहां न शीत की अधिकता है, न गर्मी की। यहां अनेक नदियां बह रही हैं और उनके दोनों तटों पर कमल खिले हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यह रैवतक पर्वत आपको अतिथि के रूप

में आया जानकर उठकर खड़ा हो गया है और आपका सम्मान कर रहा है।"

: ४ :

श्रीकृष्ण ने सारथी की ऐसी प्रिय लगनेवाली सच्ची बातें सुनी, तो उन्होंने वहां रुकने की इच्छा प्रकट की। उनकी सेना कदली वनों से शोभित उस ऊंचे रैवतक पर्वत की ओर चल पड़ी।

राजा लोगों ने सिंहों को मार डाला और उनकी गुफाओं में ठहर गये। सबने अपने-अपने लिए सुविधा-जनक स्थान ढूंढ़ लिये।

कहीं रथों की पंक्तियां लगी हुई थीं, कहीं हाथी तंबुओं की तरह शोभा दे रहे थे। बनियों ने मार्ग के दोनों ओर दुकानें सजा ली थीं और वहां खरी-दारों की भीड़ लगी हुई थी। इतने लोगों के आ जाने से खरगोश और हिरन परेशान होकर इधर-उधर दौड़ रहे थे।

श्रीकृष्ण वहां ठहर गये तो उनकी सेना के लिए वसंत आदि सभी ऋतुएं, अपने-अपने विशेष फल-फूल लेकर एक साथ धरती पर आ गईं। सबसे पहले वसंत ऋतु ने दर्शन दिये। नाना प्रकार के फूल खिल उठे। चारों ओर सुगंध महकने लगी। फिर

आई ग्रीष्म ऋतु, कोमल पाटल के फूलों की कलियां खिलाती हुई। देखते-देखते शिरीष और चमेली के फूल महकने लगे। लेकिन ग्रीष्म के तुरंत बाद वर्षा में मेघों ने आकाश को घेर लिया। बिजली और इंद्रधनुष उसकी सुंदरता को बढ़ा रहे थे। उन्हें देखकर मोर नाचने लगे। पानी पड़ने से धरती का ताप दूर हो गया। सूर्य के दर्शन दुर्लभ हो गये। पक्षी घोंसलों में जा छिपे। दिशाओं का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहा और तब आ पहुंची शरद ऋतु।

शरद के आने पर सूरज फिर चमकने लगा। हंस बोलने लगे और मोर मौन हो गये। लाल रंग के जवाकुसुम, नीलझिंटी और बंधूक पुष्पों से वन शोभित हो उठे। रक्त कमलों ने पुरुषों को उत्कंठित कर दिया। आश्विन मास में धान की रखवाली करनेवाली किसान स्त्रियों ने जब गाना शुरू किया तो हिरन धान खाना भूल गये। फिर छितवन के फूलों की महक से महकती हुई वायु ने कार्तिक मास के आने की सूचना दी। मेघ रहित आकाश ऐसा लगा जैसे म्यान से निकली हुई तलवार। धरती पर नवीन कमलों की केसर का पराग उड़ने लगा। सरोवरों का जल निर्मल हो गया। श्वेत हंस उड़ने लगे। वे ऐसे लगते थे मानो

आकाश हँस रहा हो।

इसके बाद हेमंत ऋतु ने आकर गहरी-गहरी नदियों को भी बर्फ बना दिया। जाड़ा पड़ने लगा। शिशिर ऋतु में प्रियंगु-लताओं पर फूल खिल उठे। सूर्य की किरणें भी प्रबल शीत का मान भंग न कर सकीं।

इस प्रकार फूलों के भार से पेड़ों को झुकाने वाली और भौरों की गुंजार को कभी बंद न करने वाली सारी ऋतुओं को धारण करनेवाले रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण सेना-सहित विहार करने लगे।

: ५ :

विहार करने के बाद उनकी यात्रा फिर आरंभ हो गई। श्रीकृष्ण सुंदर धुरी वाले उस रथ पर चढ़े जो सोने की तरह चमक रहा था और जिसमें तेज दौड़ाने वाले घोड़े जुते हुए थे। वह चले, दूसरे राजा उनके पीछे चले। हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ सभी चल पड़े। चलते समय पहले रथ के पहियों से मार्ग की मिट्टी फट जाती थी, फिर हाथी उसे पैरों से दबा कर समतल कर देते थे। इस प्रकार अनगिनत भागों में बटी हुई वह सेना आगे बढ़ रही थी। उसमें विनय और नम्रता की मूर्ति बने हुए अनेक छत्रधारी राजा थे। इस कारण वह केवल छत्रमयी दिखाई पड़ती थी।

मार्ग में गांव की स्त्रियां, कांटों की बाड़ों के पीछे से गरदन उठा कर, बहुत देर तक श्रीकृष्ण को निहारती रहती थीं। श्रीकृष्ण ने भी उन गोपालों को देखा, जो गोचर भूमि पर बैठे गप्पें लड़ा रहे थे, उनमें से कुछ जोर-जोर से हंस रहे थे और कुछ श्रीकृष्ण का नाम जपने में मन लगा रहे थे। कहीं गौएं आनंद से बछड़ों को चाट रही थीं। कहीं ग्वाले घुटनों में बरतन दबाये दूध दुह रहे थे और धीरे-धीरे दूध की धाराओं का स्वर बढ़ रहा था।

आगे बढ़े तो आंवले के वन में बैठी हुई पहाड़ी रमणियों ने विस्मय से आंखें फाड़कर उन्हें देखा। केसरी ने भी अनादर से एक क्षण के लिए आंखें खोलीं, लेकिन फिर बंद करलीं। वह सोना चाहता था और उसे सेना का कोई डर नहीं था।

इस प्रकार नदियों को, पहाड़ों को और नगरों को पार करती हुई वह सेना आगे बढ़ती हुई यमुना के पास पहुंच गई। सेना के लोग बहुत-सी नौकाओं में बैठकर यमुना को पार करने लगे। कुछ ने तैरकर भी पार किया। हाथी तुरंत पार चले गये। घोड़े किनारे पर दृष्टि गड़ाये ऊपर को मुंह किये आगे बढ़ रहे थे। सांड़ पार जाकर किनारे तोड़ने लगे और रथ के पहियों

से यमुना का जल उछलने लगा।

युधिष्ठिर को बराबर समाचार मिल रहे थे। जैसे ही उन्हें श्रीकृष्ण के यमुना पार करने का समाचार मिला, वह आनंद-विभोर होकर उनके स्वागत के लिए चल पड़े। सेना-सहित सब भाई भी साथ थे। दूर से ही उन्होंने श्रीकृष्ण को देखकर रथ से उतरना चाहा, परंतु उससे पहले ही अपनी बुआ के पुत्र युधिष्ठिर को प्रणाम करने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं उतर पड़े। उन्होंने जैसे ही सिर झुकाया वैसे ही युधिष्ठिर ने उन्हें अपनी भुजाओं में बांध लिया। उनका मस्तक सूंघा और उस आलिंगन के कारण वह देर तक रोमांचित रहे। छोटे भाइयों को भी श्रीकृष्ण से भेंट करके बड़ा आनंद हुआ।

उसके बाद श्रीकृष्ण को रथ पर बैठा कर युधिष्ठिर स्वयं सारथी बने। भीमसेन चंवर डुलाने लगे। अर्जुन ने छत्र लगाया। नकुल-सहदेव उनका अनुसरण करने लगे। गुरु के सामने जिस प्रकार शिष्य विनीत भाव से बैठते हैं, उसी प्रकार पांडव श्रीकृष्ण के पास बैठे।

यज्ञ के लिए आये हुए राजाओं के तंबुओं को देखते हुए उन सबने नौ द्वारों वाले इंद्रप्रस्थ नगर में

प्रवेश किया । दुंदुभि बजने लगी और पुरवासिनी रमणियां सब काम छोड़कर श्रीकृष्ण को देखने दौड़ पड़ीं । उतावली के कारण उन्होंने कटि के आभूषण गले में, कानों के सिर पर और हाथों में तथा नीचे के वस्त्र को सिर पर और उत्तरीय को नीचे पहन लिया । वे धान की खीलों को अंजलियों में भर-भर कर श्रीकृष्ण पर बरसाने लगीं और सुधबुध भूलकर सतृष्ण नेत्रों से उन्हें निहारने लगीं ।

श्रीकृष्ण ने भी उन्हें देखा । अनेक रास्तों को पार करते हुए वह सभा-भवन में पहुंच गये । इंद्र के भवन को लजानेवाले उस भवन को मयदानव ने बनाया था । उसके फर्श पर पद्मराग मणियां लगी हुई थीं, जिनपर नीलमणि की किरणों के पड़ने से ऐसा लगता था, मानो रक्त वर्ण के तालाब में काई लगी हो। दीवारें स्फटिक से बनी थीं । रात में जब चंद्रमा की किरणें उनपर पड़ती थीं तो वे एकरूप हो जाती थीं । लोग टटोल-टटोल कर उन्हें पार करते थे ।

वह सभा-मंडप ऐसा विचित्र था कि उसमें कम-लिनी के नीचे जो जल था वह थल की तरह दिखाई देता था । जिस सभा-भवन में इंद्रनील मणियों

वाले फर्श थे वहां इतनी चमक थी कि आगंतुक जल के भ्रम में वस्त्र ऊपर उठा लेते थे।

यही सब देखते हुए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ सोने की ईंटों से बने उनके भवन में गये और एक विशाल सिंहासन पर बैठ गये। नर्तकियां नृत्य करने लगीं। नगर भर में उत्सव की आज्ञा दे दी गई। ऐसा करते समय वह भूल गये कि उस नगर में तो सदा ही उत्सव होता रहता है। श्रीकृष्ण स्वजनों से कुशल-क्षेम पूछने लगे और फिर युधिष्ठिर से बातें करने में मग्न हो गये।

: ६ :

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं। आप मेरी सहायता करें। आपके पास रहने पर ही मेरा यज्ञ सकुशल समाप्त होगा। मुझे जो कुछ मिला है आपकी कृपा से मिला है। भाइयों-सहित मैं आपके अधीन हूं।"

श्रीकृष्ण ने यह सुनकर कहा, "आप राजसूय यज्ञ करने के लिए सब प्रकार से योग्य हैं। मुझसे आप जो चाहें वह काम ले सकते हैं। मुझे आप अर्जुन से भिन्न न समझें। जो राजा इस यज्ञ में दास की तरह काम न करेगा, मेरा यह सुदर्शन-चक्र उसका सिर

उड़ा देगा ।"

श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ की तैयारी करने लगे । पुरोहित लोगों ने होम द्वारा देवताओं का आह्वान किया। उद्गाता सामगान करने लगे। होता और अध्वर्यु ऋक् और यजुर्वेदों का पाठ कर रहे थे। द्रौपदी कुशा की मेखला पहने घूम-घूम कर होम की सामग्री का निरीक्षण कर रही थीं, सब काम ठीक प्रकार चल रहा था ।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर योग्य ब्राह्मणों को धन और भूमि दान में देने लगे । खूब स्वागत-सत्कार हुआ । राजाओं ने भी अपार धन युधिष्ठिर को भेंट में दिया, पर उन्होंने सबकुछ लुटा दिया । किसी को निराश नहीं लौटाया । श्रीकृष्ण को रक्षक नियुक्त कर, बिना किसी शंका और भय के, वह दान, होम और याग करने लगे ।

जब यज्ञ इस प्रकार समाप्त होने जा रहा था तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर भीष्म से पूछने लगे, "दादा, अर्घ्य-दान का अधिकारी कौन है ?" पितामह प्रसन्न होकर अर्घ्य लेने के छह अधिकारियों के गुण गिनाने लगे। अंत में बोले, "या इनमें से सब गुणों वाले एक व्यक्ति की ही पूजा करनी चाहिए, यह भी एक विधि है। इस

समय मुझे तो सब गुणों के आगार और असुरों का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूजा के योग्य दिखाई देते हैं।"

फिर विस्तार से उनके गुणों और अवतारों का वर्णन करके उन्होंने कहा, "युधिष्ठिर, तुम धन्य हो ! तुम्हारे सामने भगवान स्वयं आ गये हैं। यज्ञ में यज्ञकर्ता लोग दूर से जिनकी पूजा करते हैं उनको अर्घ्य देकर तुम हमेशा के लिए साधुवाद प्राप्त करो।"

यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं के सामने श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा की। पूजा के बाद युधिष्ठिर ने उनका जो सम्मान किया उसे शिशुपाल न सह सका। वह क्रोध से भरकर बार-बार कांपने लगा। उसकी भवें तन गईं। शरीर तमतमा उठा और आवेश में आकर उसने अपने हाथ से अपनी कठोर जांघों पर इस प्रकार ताल ठोंकी कि लोग भय से कांप उठे। इसके बाद उसने पहले युधिष्ठिर की निंदा की, "तुमने अपने संबंधी को ही गुणवान समझा, पर वह राजा नहीं है। इतने तेजस्वी राजाओं के रहते वह अर्घ्य नहीं ग्रहण कर सकता। यदि तुम कृष्ण की ही पूजा करना चाहते थे, तो तुमने अपमान करने

के लिए इन सब राजाओं को क्यों बुलाया ?" फिर वह भीष्म पितामह का उपहास करता हुआ श्रीकृष्ण से बोला, "तुम्हें यह पूजा नहीं ग्रहण करनी चाहिए थी। अपने बारे में सोचो तो कि तुम कौन हो। तुमने मधुराक्षस को नहीं मारा, मधुमक्खियों को मारा है। जरासंध ने तुम्हारा तेज नष्ट किया है। तुम सत्यप्रिय इसलिए कहलाते हो कि तुम सत्यभामा के पति हो, नहीं तो तुम झूठे हो। न तुम्हारे पास राजलक्ष्मी है, न तुमने युद्ध में कोई पराक्रम दिखाया है। जरासंध ने तुम्हें भूमि छीनकर मथुरा से निकाल दिया था। सो तुम व्यर्थ ही भूमिपाल कहलाते हो। तुम पापी हो। तुम गुणहीन हो। तुम्हारी यह पूजा बिना बालों वाले सिर में कंघी करने के समान उपहासजनक होगी।"

फिर वह राजाओं को भड़काने लगा, "हे राजा लोगो, सिंहों के समान आपको देखते हुए भी इन कुंती-पुत्रों ने गीदड़ जैसे कृष्ण की जो पूजा की उससे आपका घोर अपमान हुआ है।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण की निंदा करके शिशुपाल अट्टहास करने लगा। पर श्रीकृष्ण तनिक भी विच-लित नहीं हुए। वे प्रतिज्ञाबद्ध थे और मन-ही-मन

गिन रहे थे कि शिशुपाल कितने अपराध कर चुका है। परंतु पितामह भीष्म उनका यह तिरस्कार देख कर बहुत ही क्रुद्ध हो उठे और अपना बायां पैर धरती पर पटक कर बोले, "मैंने आज सभा में श्रीकृष्ण की जो पूजा की है, वह जिसे असह्य हो वह धनुष चढ़ा ले। मैं अपना यह पैर सभी राजाओं के सिर पर रखता हूं।"

यह सुनकर शिशुपाल के पक्ष के राजा भी क्रोध से लाल-पीले हो उठे। वे श्रीकृष्ण को तिनके के समान समझते थे। युधिष्ठिर को कुछ भी नहीं। भीष्म का उन्हें भय नहीं था। शिशुपाल सांप की तरह फुफकारता हुआ फिर विष उगलने लगा। वह बार-बार राजाओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करने लगा। अंत में श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारता हुआ पांडवों के रोकने पर भी वह सभा-मंडप से बाहर चला गया।

वह इतनी तेजी से घोड़े पर चढ़कर भागा कि मार्ग में लोग 'यह क्या बात हो गई' कहकर सोचते ही रह गये। फिर शंख बज उठे। रणभेरी गूंजने लगी। जनता में व्यग्रता फैल गई और राजाओं ने झट अपने-अपने कवच पहन लिये। सैनिक, हाथी, घोड़े, रथ अति

शीघ्र आकर उपस्थित हो गये। रानियां भी राजाओं को विदा देकर उनके साथ बलि होने को तैयार हो गईं। किसी ने प्रेम से, किसी ने वीर वचनों से, किसी ने मंगल कामना से सब योद्धाओं को विदा दी।

: ७ :

रण की तैयारी हो जाने पर शिशुपाल ने एक दूत को, जो ठीक अवसर पर उचित उत्तर देने में निपुण था, श्रीकृष्ण के पास भेजा। उसने इस प्रकार की बातें कहीं, जिसका अर्थ स्तुति और निंदा दोनों होता था। उसकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने सात्यकि को इशारा किया। वह कहने लगे, "हे दूत, तुम बड़े कुशल हो। तुमने बाहर से प्रिय लगनेवाली पर वास्तव में भीतर से अप्रिय बातें इस प्रकार से कहीं हैं कि वे हमें बाहर से अप्रिय और भीतर से प्रिय मालूम पड़ रही हैं। तुम्हारी वाणी सुनकर सज्जन पुरुष भी उद्विग्न हो उठे हैं। पिंगल पक्षी की वाणी सुनने में मीठी पर परिणाम में अनिष्टकारी होती है।"

इस प्रकार दूत की निंदा करके सात्यकि ने शिशुपाल को भी खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने कहा, "शिशुपाल के प्रलाप से श्रीकृष्ण की कोई हानि नहीं है। दुर्जनों के कड़वे वाक्यों से महान् पुरुषों का गौरव

नष्ट नहीं होता। दुष्ट लोग अपने दोष देखने में अंधे होते हैं, लेकिन दूसरों के छोटे-से-छोटे दोष को देखने में वे दिव्यदृष्टि वाले बन जाते हैं। सज्जन लोग ऐसा नहीं करते। वे न आत्म-प्रशंसा करते हैं, न पर-निंदा।

"हे दूत! शिशुपाल यदि संधि करना चाहता है तो फिर युद्ध की तैयारी क्यों! आक्रमण के भय से श्रीकृष्ण झुकनेवाले नहीं हैं। हे दूत, सुन लो। अब अगर तुमने बकवाद की तो हम क्रोध को नहीं रोक सकेंगे।"

सात्यकि के ये बचन सुनकर वह निडर दूत बोला, "मैंने संधि और युद्ध दोनों की बात आपके सामने रखदी है। अब आप जैसा ठीक समझें, करें। नीच लोग गुण और दोष की विवेचना न कर मनमानी करते हैं। युधिष्ठिर ने शिशुपाल को छोड़कर आपकी पूजा की। फिर भी प्रधान वही हैं। उन्होंने मुझे युद्ध में यादव-गणों को आह्वान करने के लिए भेजा है। वह शीघ्र ही आपका वध करेंगे।"

जब उस निपुण दूत ने प्रलय की वायु के समान ऐसे प्रचंड वचन कहे तो सभा में उपस्थित राजा लोगों का पारा चढ़ गया। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और वे बार-बार हाथों से जांघों को पीटने

तथा दांतों से ओठों को काटने लगे। लेकिन श्रीकृष्ण का चित्त तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुआ। मेघों का जल नदियों के जल को विकृत कर देता है, पर समुद्र के जल में कोई विकार पैदा नहीं होता। इसी प्रकार उद्धव भी शांत बने रहे, लेकिन दूसरे यदुवंशी दूत को धिक्कारने लगे। जब वह चला गया तो श्रीकृष्ण की सेना भी तुरंत युद्ध की तैयारी करने लगी। बार-बार रण-भेरी बजने लगी। इतना कोलाहल मचा कि देवता भी बहरे हो गये।

दोनों सेनाएं जब एक-दूसरे के सामने आ गईं तो पैदल पैदल से, घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथियों से तथा रथ रथों से भिड़ गये। रण-भेरी की गंभीर ध्वनि, रथों की घरघराहट, हाथियों के भीषण चीत्कार और घोड़ों की हिनहिनाहट मिलकर एक हो गई। कुछ योद्धा वाणों का प्रयोग कर रहे थे, कुछ तलवार आदि का। कुछ अस्त्र फेंककर कुश्ती लड़ रहे थे। किसी ने तेज तलवार के आघात से सामने वाले योद्धा का कवच काट डाला। किसी ने वाण से दूसरे योद्धा की बाईं भुजा को, कांख तक, काट डाला, लेकिन उसने फिर भी ढाल को नहीं छोड़ा।

हाथियों का युद्ध अपूर्व था। वे पैरों से, दांतों से, सूंड से, सभी से युद्ध करते थे। वीर पुरुष जब समर-

भूमि में सो जाते तो स्वर्ग की अप्सराएं तुरन्त उन्हें लेने आ जाती थीं, पर उससे पूर्व ही उनकी पत्नियां सती होकर उनके पास पहुंच जाती थीं।

कहीं श्वेत रंग के छत्र पड़े थे, कहीं कुमकुम से रंगे मोतियों के हार। निचले स्थानों पर पड़ा रक्त ऐसा चमक रहा था मानो यमराज ने सुंदरियों के दुपट्टों को रंगने के लिए कुसुंभ का रंग घोल रखा हो। जगह-जगह रक्त की नदियां बह रही थीं और हाथियों के कटे पैर उन नदियों में कछुए के समान लगते थे। पक्षी और गीदड़ भोजन में जुटे हुए थे।

इस प्रकार निरंतर वेग से आगे बढ़ती हुई शिशुपाल के पक्ष की सेना श्रीकृष्ण की विशाल और तरंगित सेना के साथ युद्ध करने लगी। जय-पराजय निश्चित नहीं थी। भारी कोलाहल मचा हुआ था।

तभी नरकासुर का बेटा वेणुदारी सिंह रूपी बलराम की ओर दौड़ा। बलराम ने क्रोधित होकर तीक्ष्ण बाणों से उसे मूर्छित कर दिया। इसी प्रकार शिनि ने शाल्व राज पर, उल्मुक ने द्रुम पर और पृथु ने रुक्म पर विजय पाई। महाप्रतापी प्रद्युम्न ने पहले तो बाण को पराजित किया, फिर उन्होंने उत्तमौजा के तेज को नष्ट कर डाला। उनका अपूर्व युद्ध-कौशल देखकर

देवता रोमांचित हो उठे। लेकिन अभिमानी शिशुपाल का क्रोध बढ़ गया। वह पागल होकर शत्रुओं की ओर दौड़ा। उसकी सेना भी निर्भयता और ढिठाई के साथ आगे बढ़ी। यह देखकर स्वभाव से युद्ध के लिए तैयार रहनेवाली तेजस्वी यदुवंशियों की सेना भी उसकी ओर दौड़ी। देखते-देखते तेज चलनेवाले घोड़े और पंखों वाले वाण एक साथ शत्रु-सेना के बीच में घुस गये। भयंकर युद्ध के बाद फिर खून की नदी बहने लगी। उसमें हाथियों की सूंड, वाहन और रथ तैर रहे थे। उनकी कटी देह से वह रणभूमि शोभित हो रही थी।

इसी समय नीलवर्णी परमपुरुष श्रीकृष्ण वहां आये। उन्होंने विशाल डोरी को चढ़ाते हुए धनुष को झुकाया। फिर उसपर वाण चढ़ाकर, शत्रु पर आक्रमण करने लगे। वे बड़ी शीघ्रता से शर-संधान कर रहे थे। उन्होंने असंख्य तीक्ष्ण वाणों से ढेर-के-ढेर शत्रुओं के सिर काट डाले और रक्त की नदी प्रवाहित कर दी। वह कल्याण-मूर्त्ति थे, पापों को नष्ट करनेवाले शुद्ध-बुद्ध थे, निर्भय थे। उन्होंने युद्ध में अनुरक्त होकर अहंकार के साथ बल का आश्रय लिया और सिंहनाद करते हुए एक समय में, एक ही बार बहुत से वाण फैंककर आकाश को भर दिया।

शिशुपाल यह पराक्रम नहीं सह सका। उसकी भवें तन गईं और वह निडर होकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा। वह निरंतर वाण छोड़ रहा था और उसने श्रीकृष्ण की सारी सेना के चारों ओर मानो उसे सूर्य की गरमी से बचाने के लिए वाणों का एक बड़ा वितान-सा तान दिया था।

उसके बाद अद्वितीय महावीर श्रीकृष्ण वाणवर्षा द्वारा शिशुपाल के वाणों को काटने लगे। उनका धनुष बराबर जोर से शब्द कर रहा था। प्रत्यंचा बिजली के समान चमक रही थी। मेघ से जैसे जलधारा निकलती है, वैसे ही धनुष से वाणवर्षा हो रही थी।

दोनों के वाण टकरा कर आग पैदा करने लगे। लेकिन जिस प्रकार शरत काल की वायु मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने शत्रु के वाणों को काट डाला। यादव सेना खुशी से भर उठी।

अब शिशुपाल ने माया-युद्ध शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने सुलाने वाला अस्त्र फेंका। यादव सैनिक धनुषों के ऊपर झुककर सोने लगे। उनके हाथों से अस्त्र गिरने लगे। सारी सेना में केवल श्रीकृष्ण ही जाग रहे थे। उन्होंने तुरंत उस माया को दूर कर दिया। माया के दूर होते ही सारी सेना जाग उठी। शिशुपाल ने जब यह देखा तो

मंत्र पढ़कर उसने भयंकर सर्प पैदा कर दिये। उन्होंने आकाश मार्ग से यादव सेना पर आक्रमण किया और उससे लिपट गये। उसी समय श्रीकृष्ण ने गरुड़ की ओर देखा। देखते-देखते हजारों गरुड़ पैदा हो गये। उन्हें देखते ही सांप भय से विह्वल होकर पाताल में घुस गये अब शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र को पुकारा। चारों ओर से आग की लपटें उठने लगीं। संसार जलने लगा। श्रीकृष्ण ने तुरंत वरुणास्त्र को याद किया। सारा आकाश काले मेघों से भर गया। बिजली कड़कने लगी। तूफानी वर्षा ने जरा-सी देर में उस अग्नि को शांत कर दिया। शिशुपाल इस पर क्रोध से पागल हो उठा, नये-नये अस्त्र छोड़ने लगा और श्रीकृष्ण उन्हें काटने लगे।

अंत में उन्हें अजय मान कर शिशुपाल फिर अपशब्द बोलने लगा। उसके ऐसा करने पर श्रीकृष्ण ने तुरंत सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला। उस समय राजाओं ने विस्मय से देखा कि शिशुपाल की देह से एक परम दीप्तमान तेज निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में समा गया है। उसी क्षण दुंदुभी बज उठी। स्वर्ग से पुष्प बरसने लगे और ऋषियों की स्तुति से वातावरण गूंज उठा।

'संस्कृत साहित्य सौरभ' की पुस्तकें

१. ...री
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
रघुवंश
६. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६ मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१६. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौंदरनंद

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१६

छः आना